युद्ध

लुइजी पिरांदेल्लो

रात की एक्सप्रेस में रोम से आए यात्रियों को सुबह तक फाब्रिआनो नामक छोटे स्टेशन पर रुकना पड़ा, जहाँ मेन लाइन से सुलोमोना को जोड़ने वाली पुराने ढंग की 'लोकल' से उन्हें आगे जाना था।

सुबह-सुबह आकारहीन गठरी जैसी एक गमगीन मोटी औरत को सेकण्ड-क्लास के एक डिब्बे में चढ़ाया गया, जिसमें पिछली रात से पाँच लोग बैठे हुए थे। उसके पीछे दुःख भरी साँसें लेता और रुआँसा चेहरा लिए उसका पति चढ़ा। वह दुबला और कमज़ोर था, उसका चेहरा मुरझाया हुआ था और उसका कद छोटा था। उसकी छोटी आँखें शर्मीली और परेशान-सी थीं और चमक रही थीं।

सीट पर अच्छी तरह बैठकर उसने उन सभी यात्रियों को शुक्रिया

कहा, जिन्होंने उसकी पत्नी को चढ़ाने में मदद की और उसे जगह दी। फिर उस औरत की ओर मुड़कर, उसकी कोट की कॉलर खींचते हुए नर्म आवाज़ में पूछा, "अब जी ठीक है तुम्हारा?"

पत्नी ने जवाब नहीं दिया और कॉलर आँखों तक वापस खींच ली, जिससे उसका चेहरा ढँक जाए।

"बड़ी खराब है ये दुनिया," पति ने दुखभरी मुस्कान के साथ कहा।

और उसे लगा कि यह उसकी ज़िम्मेदारी है कि वह साथ के यात्रियों को यह बतलाए कि उस औरत की परिस्थिति सचमुच दयनीय है क्योंकि उसके एकमात्र बेटे को जंग के लिए बुलावा आया है; उसकी सारी ज़िन्दगी उस बीस साल के बेटे की देखभाल में बीती थी; यहाँ तक कि वे उसके साथ सुलोमोना से घर छोड़ रोम तक गए, जहाँ वह पढ़ाई के लिए आया था, फिर कैसे छह महीने तक मोर्चे पर न जाने के आश्वासन पर उन्होंने उसे जंग के लिए स्वयंसेवी बनने की अनुमति दी थी और फिर उन्हें अचानक तार मिला कि वह तीन दिनों में जाने वाला है और वे आकर उसे विदा करें।

***

भारी कोट से दबी उस औरत का शरीर रह-रह कर हिल रहा था और तड़पती हुई वह बीच-बीच में किसी जानवर-सी गुर्रा रही थी, उसे मानो स्पष्ट रूप से यह पता था कि इन सब लोगों की ज़रा भी सहानुभूति उसके प्रति नहीं होगी - क्योंकि वे भी आखिर उन्हीं जैसी हालत में होंगे। उनमें से एक आदमी, जो बड़े ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था, बोला, "खुदा का शुक्र मनाओ कि तुम्हारा बेटा अभी मोर्चे पर जा रहा है, मेरा बेटा वहाँ जंग के पहले दिन से गया हुआ है। इसी बीच वह दो बार ज़ख्मी होकर लौट आया और फिर से वापस मोर्चे पर भेजा गया।"

"और मेरी भी सुनो - मेरे दो बेटे और तीन भतीजे मोर्चे पर हैं," एक और यात्री ने कहा।

"ठीक है, पर हमारा तो इकलौता बेटा है," पति ने ज़ोर देकर कहा।

"तो क्या फरक पड़ता है? इकलौते बेटे को ज़्यादा लाड़ देकर आप उसे बिगाड़ सकते हैं, पर अगर आपके और भी बच्चे होते तो आप उन्हें कम प्यार नहीं करते। माँ-बाप का प्यार कोई रोटी नहीं होती, जिसे आप बच्चों में बराबर-बराबर बाँट सकें। बाप सभी बच्चों से बिना भेद-भाव के समान रूप से प्यार करता है, चाहे वह एक हों या दस और मुझे अपने दो बच्चों के लिए जितनी तकलीफ हो रही है, वह एक-एक के लिए आधी-आधी नहीं, बल्कि दुगुनी हो रही है..."

"ठीक बात है... ठीक बात है...," पति ने झेंपते हुए लम्बी साँस ली,

"पर देखिए, (हमें पूरी आशा है कि आपके साथ ऐसा नहीं होगा) अगर एक पिता के दो बेटे मोर्चे पर हों और उनमें से एक खतम हो भी गया, फिर भी उनको सान्त्वना देने के लिए एक तो बाकी रहेगा... पर...।"

"वाह भाई", दूसरा व्यक्ति बिगड़ते हुए बोला, "एक तो उसके चित्त की शान्ति के लिए रह जाएगा, अब उसे बच गए बेटे के लिए ज़िन्दा रहने को मजबूर होना पड़ेगा, जबकि इकलौते बेटे का बाप बेटे की मौत के बाद खुद भी मरकर अपने गम से छुटकारा पा सकता है। इन दो में से कौन-सा हाल ज़्यादा खराब है? आप ही बतलाएँ, मेरी हालत आपसे बदतर है या नहीं?"

"क्या बकवास है," खून से भरी पर बिलकुल बेजान स्याह रंग की आँखों वाला लालमुँहा, एक अन्य मोटा यात्री अचानक बोल उठा।

उसका दम उखड़ रहा था, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से भयंकर कोई अन्दरूनी आक्रोश बेरोक उमड़ रहा था और उसका कमज़ोर शरीर इसे सह नहीं पा रहा था।

"बकवास," सामने के दो टूटे दाँतों को छिपाने के लिए हाथ से मुँह ढँकते हुए वह फिर बोला, "कैसी बकवास है

यह.. क्या हम अपने फायदे के लिए बच्चे जनते हैं?"

दूसरे मुसाफिर परेशान होकर उसकी ओर ताकने लगे। जंग के पहले दिन से मोर्चे पर भेजे गए लड़के के बाप ने लम्बी साँस लेकर कहा, "सही है, हमारे बच्चे हमारे अपने लिए नहीं होते, वे हमारे देश की सन्तान हैं..."

"छोड़िए साहब," मोटे यात्री ने गुस्से में जवाब दिया, "क्या हम बच्चों को जनते वक्त देश का ख्याल करते हैं? हमारे बेटों का जन्म... हाँ, उनका जन्म इसीलिए होता है कि वह तो होना ही है, और जीवन मिलते ही हमारी ज़िन्दगी उनकी ज़िन्दगी बन जाती है। यही सच है, हम उनके होते हैं, पर वे हमारे नहीं होते। और बीस साल की उम्र में वे वही होते हैं, जो हम उनकी उम्र में होते थे। हमारे भी माँ-बाप थे, पर दूसरी भी बातें थीं हमारी ज़िन्दगी में... लड़कियाँ, सिगरेट, ख्वाब, नए रिश्ते... और हाँ वतन भी, जिसके लिए बीस साल की उम्र में हम खुद को न्यौछावर करने को तैयार थे - हमारे माँ-बाप के मना करने पर भी। अब इस उम्र में - वतन के लिए हमारा प्यार बढ़ा ज़रूर है, पर इससे अधिक हम अपने बच्चों को प्यार करते हैं। हममें से कोई ऐसा नहीं होगा जो बेहिचक मोर्चे पर अपने बेटे की जगह जाने को तैयार न हो।"

चारों ओर से लोग चुपचाप सिर हिलाकर सहमति प्रकट कर रहे थे।

"तो फिर," मोटा आदमी बोलता रहा, "बीस साल की उम्र के अपने बच्चे की भावनाओं की हम कद्र क्यों नहीं करते? यह तो स्वाभाविक ही है कि इस उम्र में (वैसे मैं सिर्फ अच्छे बच्चों की ही बात कर रहा हूँ) वे हमारी अपेक्षा देश से अधिक प्यार करेंगे, ऐसा तो होना ही है क्योंकि उनकी दृष्टि में तो हम बुड्ढे हैं, जो हिल-डुल नहीं सकते और घर पर पड़े रहने को मजबूर हैं। आखिर वतन अगर कुदरती तौर पर लाज़िम है, अगर रोटी-पानी की तरह देश भी बुनियादी ज़रुरत है, तो उसकी रक्षा के लिए किसी को तो लड़ना ही होगा, और इसीलिए हमारे बेटे लड़ने गए हैं, और उनके लिए हमें आँसू नहीं बहाने चाहिए, क्योंकि अगर वो खत्म हो जाते हैं तो सुख की इन्तहा में ही वो खत्म हुए (हाँ, ये सिर्फ अच्छे बच्चों की ही बातें हैं)। भई, अगर कोई ज़िन्दगी की परेशानियों से, ऊब से, छुटपन से और हताशा-जनित द्वेष से बचकर सुखपूर्वक जवानी में ही गुज़र जाए तो इससे अधिक हम क्या चाह सकते हैं? लोगों को रोना बिलकुल नहीं चाहिए... बल्कि आप सब मुस्कुराइए, मेरी तरह... कम-से-कम खुदा का शुक्र अदा करें - मेरी तरह – क्योंकि मेरे बेटे ने मरने के पहले मुझे यह पैगाम भेजा कि अपनी कल्पना में सबसे अच्छी मौत मरने के सन्तोष के साथ ही वह जा रहा है। इसी वजह से, जैसा कि आप देख रहे

हैं, मैं मातमी के कपड़े नहीं पहनता...”

दिखलाने के लिए उसने अपना हल्का पीले-भूरे रंग का कोट हिलाया, टूटे दाँतों पर उसके जीवन्त होंठ हिल रहे थे, उसकी आँखें गतिहीन छल-छला रहीं थी और एक तीखी हँसी के साथ उसने बातें खत्म कीं, जो कि रोना भी हो सकता था।

“हाँ, सही बात है... सही है...।” दूसरों ने सहमत होते हुए कहा।

अपने कोट के नीचे दबी, कोने में गठरी-सी पड़ी वह औरत पिछले तीन महीनों से अपने पति और हमजोलियों के मुँह से अपने गहरे दुःख को कम करने के लिए कुछ सुनने का इन्तज़ार कर रही थी - ऐसा कुछ जिससे वह समझ पाए कि कैसे एक माँ अपने बेटे को - ज़रूरी नहीं कि मौत ही हो - पर जीवन-हानि की सम्भावना तक भेजने के लिए तैयार हो सकती है। पर इन सभी बातों में उसे एक भी शब्द काम का नहीं लगा... और उसे यह जानकर और भी तकलीफ हो रही थी कि - जैसा उसने सोचा था - कोई उसकी भावनाओं को नहीं समझ सकता था।

पर इस मुसाफिर की बातों से वह हैरान और स्तब्ध हो गई, अचानक उसे यह बात समझ में आई कि दूसरे लोगों की यह कमज़ोरी नहीं थी कि वे उसे समझ नहीं पा रहे हों, बल्कि वह खुद उन माँ-बाप की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पा रही थी, जिन्होंने बिना रोए अपने बेटों को न केवल जाने दिया, बल्कि उनकी मौत तक स्वीकार कर ली।

उसने अपना सिर उठाया। वह मोटा आदमी अपने साथियों को जिस तरह विस्तार से अपने बेटे की शिकवा किए बगैर खुशी-खुशी अपने सम्राट, अपने वतन के लिए बहादुरी के साथ मर मिटने की बातें सुना रहा था, उसे ध्यान से सुनने की कोशिश में अपने कोने से तिरछी होकर बैठी। उसे लगा कि वह भूले-भटके ऐसी दुनिया में आ पहुँची थी जिसका उसने ख्वाब तक न देखा था और जिससे वह बिलकुल अंजान थी। उसे यह देखकर बड़ी खुशी हो रही थी कि अपने बच्चे की मौत के बारे में ऐसी उदासीनता से बातें करते उस बहादुर बाप को हर कोई बधाई दे रहा था।

***

फिर मानो उसने अब तक कही गई कोई बात सुनी ही न हो, और जैसे वह किसी ख्वाब से उठी हो, उस बुज़ुर्ग की ओर मुड़कर उसने पूछा, “तो, तुम्हारा बेटा क्या सचमुच मर गया है?”

हर कोई उसे घूरने लगा। वह बूढ़ा भी उसे देखने के लिए मुड़ा। उसकी बड़ी, फूली हुई, बुरी तरह छलक रही गीली, हल्की-स्याह आँखें उस औरत की शक्ल पर गहराई तक गड़ गईं। वह उसकी तरफ देखता ही रह गया,

मानो जैसे तभी, उस पल, उस निहायत नासमझ, बेमानी सवाल पूछे जाने पर उसे अचानक एहसास हुआ कि आखिर उसका बेटा वाकई मर चुका था - हमेशा हमेशा के लिए वह जा चुका था। उसकी शक्ल सिकुड़ गई, उसमें भयंकर खिंचाव आ गया। जल्दी में उसने जेब से रूमाल निकाला और सभी को हैरत में डालते हुए जिगर कँपाने वाली चीखों के साथ बेकाबू होता वह रोने लगा।

लुइजी पिरांदेल्लो (1867-1936): इटली के कथाकार एवं नाटककार थे। सन् 1934 में साहित्य में नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया था। इन्होंने 16 वर्ष की अल्पावस्था में ही काव्य-लेखन आरम्भ कर दिया था। पिरांदेल्लो ने उपन्यास भी लिखे हैं, परन्तु उन्हें विशेष ख्याति अपने नाटकों के लिए मिली, जिनमें उन्होंने अनेक प्रयोग किए हैं और अपने द्वीप की स्थानीय भाषा और प्रवृतियों को बहुत स्पष्ट स्वर दिया है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू': हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि व कहानीकार हैं।

सभी चित्र: नीलोफर वाडिया: 20 साल विज्ञापन के क्षेत्र में काम करने के बाद, चित्रकारी और फाइन आर्ट्स पेंटिंग चुनी। *प्रथम बुक्स* द्वारा 2015 में आयोजित एक ऑनलाइन प्रतियोगिता से बच्चों की किताबों के लिए काम करने का एक सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ। तब से लेकर अब तक नीलोफर ने 30 से ज़्यादा भारतीय और विदेशी किताबों के लिए चित्र बनाए हैं। अपनी किशोर बेटी के साथ वे अभी पुणे में रहती हैं।

यह कहानी *जनसत्ता* के अंक 3 मार्च, 1991 में प्रकाशित हुई थी।